प्रवचन नं. ३००, गाथा - २२४ से २२७, श्लोक-१५३ रविवार, भाद्र शुक्ल ११
दिनाङ्क ०२-०९-१९७९

दशलक्षण पर्व का सातवाँ दिन है न? तप... तप। तप किसे कहना? सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र के धारण करनेवाले... आहाहा! जो आत्मा ज्ञातृतत्त्व है, उसे जिसने जाना है, वह जाननेवाला सम्यग्दर्शन है—ऐसा कहते हैं। आत्मा ज्ञातृतत्त्व है। कल दोपहर को आया था न, कि शब्द और शब्दों में कहा हुआ अर्थ, इस शब्द को भी ज्ञानाकार से ज्ञेयाकार को जानता है और पूरे विश्व को ज्ञानाकाररूप जानता है, ऐसा जो ज्ञातृतत्त्व। वहाँ तो एक पद कहा था न? भाई! शब्द को, पूरे शब्दब्रह्म को, शब्द-सत्। पूरा विश्व, पदार्थ दोनों को जाननेवाला पद अर्थात् अधिष्ठाता आत्मा। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा जो आत्मतत्त्व सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र को धारण करनेवाला। उसे सम्यग्ज्ञान से जिसने जाना है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहा! जो यह शब्द सत् है, सत्, वह छह द्रव्यों को बतानेवाला शब्द है और सत् ऐसा विश्व—पूरी दुनिया, इन दोनों का जिस ज्ञान की पर्याय

में ज्ञातृतत्त्व दोनों की जाति का जाननेवाला हुआ है, आहाहा! ऐसा जो शब्द और अर्थ—पूरी दुनिया, विश्व, लोकालोक, उसे जानने की पर्यायरूप परिणमता है, ऐसा जो अधिष्ठान अर्थात् आत्मा। उसका जिसे सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र से सम्यग्ज्ञान हुआ है। आहा! अभी पहले तपस्या किसे कहना? अभी इस (तत्त्व का) भान नहीं होता और तपस्या (करे), वह तपस्या नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र को धारण करनेवाले कर्मरूपी मैल को दूर करने के लिये तपस्या तपाने में आती है। आहाहा! जिसने यह आत्मा ज्ञायकतत्त्व पूरा जगत और शब्द को जाननेवाला, ऐसे तत्त्व का जिसने निर्णय किया है और फिर कर्ममल टालने के लिये उस स्वरूप में तन्मय होकर रमता है, उसे तप कहा जाता है। अरे! ऐसी बात है। तपाया जाता है अर्थात् फिर अन्दर आनन्द में रहते हुए कर्म के रजकण और अशुद्धता टल जाती है। आहाहा! वह बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का तप है। अनशनादि भेद से बारह प्रकार का है। अभ्यन्तर और बाह्य से दो प्रकार का है और बाह्य-अभ्यन्तर के भेद से बारह प्रकार का है। वह तप जन्मरूपी समुद्र को पार करने के लिये जहाज के समान है। आहाहा!

ज्ञातृतत्त्व जो ज्ञायकस्वरूप भगवान, स्व-पर को जाननेवाला और शब्द को भी जाननेवाला, ऐसा जो ज्ञायकतत्त्व, जिसने सम्यग्ज्ञान नेत्र द्वारा जिसका निर्णय किया है, आहा! वह पश्चात् उसमें लीनता करता है, तपता है। जैसे सूर्य प्रकाश से शोभता है, वैसे अपन प्रकाश, ज्ञान के प्रकाश की उग्रता के प्रताप से कर्म जल जाते हैं। उसे यहाँ तप कहा जाता है। यह उत्तम तप, हों! दस उत्तम (धर्म) है न? इसलिए उत्तम तप में पहला सम्यग्ज्ञान और दर्शन होना चाहिए। इसके बिना तप, वह तप नहीं है। आहाहा!

दूसरा। इसमें जरा लम्बी बात है। जो क्रोधादि कषायें और पंचेन्द्रिय विषयोंरूप उद्धत अनेक चोरों का समुदाय बहुत मुश्किल से जीता जा सकता है, वह तपरूपी सुभट द्वारा... आहाहा! इस भगवान आनन्द और ज्ञायकस्वरूप में लीनता द्वारा, अन्तर के आनन्द में रमने द्वारा, बलपूर्वक मार खाकर नाश पाते हैं। (अर्थात्) रागादि मर जाते हैं। आहा! जीवित ज्योति को जहाँ जागृतरूप से उग्र करता है, वहाँ राग और कर्म, वे मर जाते हैं, जला डालता है। आहाहा! इसे तप कहा जाता है। यह तो नहीं जहाँ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और भान

और अपवास किये और यह किया, तपस्या (की), वह तपस्या निर्जरा (–ऐसा माने)। धूल भी नहीं निर्जरा। यह निर्जरा अधिकार है न? दोपहर में चलता है, उसमें यही अधिकार आयेगा। आहा!

मार खाकर नाश पाते हैं। आहाहा! अर्थात्? भगवान ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसमें लीनता करने से राग और कर्म मार खाकर, मरकर नाश पाते हैं। आहा! जीवित ज्योति जागृत करने पर, आहाहा! चैतन्य के प्रकाश को जागृत, उग्र करने पर, यह राग और कर्म तपकर जल जाते हैं, मर जाते हैं, कहते हैं। आहा! इसे तप कहा जाता है। अभी तो तप की व्याख्या आठ-दस अपवास करे दश लक्षण के और हो गया तप। धूल भी नहीं। आहा! उसमें (कषाय मन्द) होवे तो कदाचित् पापानुबन्धी पुण्य बँधता है। पापानुबन्धी पुण्य। आहाहा! यह (ऊपर कहे गये) तप को भगवान तप कहते हैं। आहाहा!

धर्मरूपी लक्ष्मी से संयुक्त साधु मोक्षनगरी के मार्ग में सर्व विघ्न-बाधाओं से रहित होकर, आहाहा! अन्तर की आनन्द की रमणता में बाधा, पीड़ारहित होकर अन्दर से मोक्षनगरी में चला जाता है। पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति के रास्ते चला जाता है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। लोक में मिथ्यात्वादि के निमित्त से तीव्र दुःख प्राप्त होना था, उसकी अपेक्षा से तप से उत्पन्न होता दुःख अल्प है। दुःख अर्थात् दुःख तो नहीं, परन्तु ऐसा कि बाहर में जो दुःख सहन करना, उसकी अपेक्षा अन्तर में रमने से जरा प्रतिकूलता आवे और सहन करना, वह अल्प है। जितना समुद्र जल की अपेक्षा से उसकी एक बूँद होती है। ऐसे आत्मा में ध्यान से कुछ सहन करना पड़े, वह अल्प है और अज्ञान में जो सहन करना पड़े, वह समुद्र के विशाल जल जैसा है। आहा!

कठिनाई से मनुष्य पर्याय प्राप्त होने पर भी, यदि तू इस समय तप से भ्रष्ट होगा... आहाहा! तो फिर तुझे कितनी हानि होगी, यह जानता है? उस अवस्था में तेरा सर्वस्व नष्ट हो जाएगा। आहाहा! भगवान जीवती ज्योति ज्ञातृतत्त्व में रमणता की तपस्या यदि नहीं की... आहा! तो भ्रष्ट होकर, प्रभु! तू कहाँ जाएगा? आहाहा! तेरा अवतार कहाँ होगा? यह तप की व्याख्या की।

यहाँ अपने २२४ गाथा। यह है न?

पुरिसो जह को वि इहं वित्ति–णिमित्तं तु सेवदे रायं।
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए।।२२४।।
एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुह–णिमित्तं।
तो सो वि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए।।२२५।।
जह पुण सो च्चिय पुरिसो वित्ति–णिमित्तं ण सेवदे रायं।
तो सो ण देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पाए।।२२६।।
एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवदे ण कम्म–रयं।
तो सो ण देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पाए।।२२७।।

ज्यों जगत में को पुरुष, वृत्तिनिमित्त सेवे भूप को।
तो भूप भी सुखजनक विधविध भोग देवे पुरुष को।।२२४।।
त्यों जीव पुरुष भी कर्मरज का सुख अरथ सेवन करे।
तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोग देवे जीव को।।२२५।।
अरु वो हि नर जब वृत्तिहेतू भूप को सेवे नहीं।
तो भूप भी सुखजनक विधविध भोग को देवे नहीं।।२२६।
सद्दृष्टि को त्यों विषय हेतू कर्मरजसेवन नहीं।
तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोग को देता नहीं।।२२७।।

आहाहा! **टीका : जैसे कोई पुरुष फल के लिये राजा की...** राजा के मक्खनियाँ होते हैं न? अनुकूल बोलनेवाले। वे राजा की हेतु से सेवा करते है, कुछ मिले। मक्खन लगाते हैं कि तुम बहुत ऐसे हो और तुम ऐसे हो और तुम ऐसे हो। आहाहा! **जैसे कोई पुरुष फल के लिये...** मैं इसकी सेवा करूँगा तो मुझे कुछ देगा, जमीन देगा, पैसा देगा। आहाहा! (उसी प्रकार जीव) **फल के लिये सेवा करता है... राजा उसे फल देता है, इसी प्रकार जीव फल के लिये कर्म की सेवा करता है...** राग का भोग भी राग में सुख मानकर भोगता है। आहा! राग में सुखपने को मानकर राग को सेवन करता है। आहाहा! **तो वह कर्म उसे फल देता है।** उसे विकार बन्धन होता है। आहाहा! उसे ये संयोग मिलेंगे, स्वभाव नहीं मिलेगा। आहाहा!

और जैसे वही पुरुष फल के लिए राजा की सेवा नहीं करता तो वह राजा उसे फल नहीं देता,... आहाहा! **इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि फल के लिए कर्म की सेवा नहीं करता...** आहाहा! राग में सुखबुद्धि है, इस तरह राग का सेवन नहीं करता। आहाहा! भोग में सुख है, ऐसी बुद्धि से भोग को नहीं भोगता। आहाहा! उस पुरुष को **वह कर्म उसे फल नहीं देता।** उसे रागबन्धन नहीं होता। आहाहा! उसे निर्जरा हो जाती है। उसे कर्म फल नहीं देता। आहाहा!

जामनगर में एक पारसी दीवान था न? महेरबानजी (नाम से)। जामनगर में (संवत्) १९९१ में हम जामनगर में गये थे न? महेरबानजी दीवान सुनने आते थे। यह समयसार का वाँचन चलता था। १००वीं गाथा। १९९१ के मगसिर महीने की बात है। फिर किसी ने बात की थी कि उन्हें हजार का वेतन था। तब, हों! दरबार ने उससे पूछे बिना दो सौ (रुपये) बढ़ा दिये। उन्हें खबर पड़ी कि देखा तो, यह पैसे अधिक किसने दिये। किसने नौंध की? राजा से कहा। राजा को कहा कि किसलिए अधिक दिये? मेरा वेतन हजार है और तुमने बारह सौ किसलिए किया? तुम्हारे काम आवे तो मैं अनुकूल कर दूँ, ऐसा? इसके लिये? राजा के काम आवे तो मैं उन्हें निर्दोष रीति से सिद्ध कर दूँ, इसके लिये देते हो यह? यह मैं नहीं, निकाल डालो। पारसी, हों! यह दो सौ वेतन बढ़ाकर तुम्हारे राजा के काम आवें, तब उनमें मैं छूट दे दूँ, यह मुझसे नहीं होगा। मुझसे तो रैयत का जो फल लेता हूँ, वह तुम्हारे राजा का, किसी का पक्ष मुझे नहीं हो सकता। तो तुम्हारी नौकरी है। समझ में आया?

उनका भी आया था न कुछ? गोपाल... क्या कहलाते हैं वे? बरैया। अपने यह 'सिद्धान्त प्रवेशिका' छपाई है न? बरैया को भी नौकरी थी। उसमें अधिक पैसे दिये, लिखे। उनके नाम से बड़ा धन्धा किया था, और उसमें आमदनी हुई और आमदनी हुई तो उनके नाम से दी। बहियों में लिखा (तो कहा), किसने लिखा यह? मैंने धन्धा किया नहीं, मेरे नाम से धन्धा किसने किया? कि राजा ने किया या दूसरा कोई गृहस्थ होगा। उसे फल मिला, वह तुमको दिया है। बिलकुल न्याय नहीं। तो किसी समय मेरे नाम से नुकसान हो जाए तो मेरे ऊपर दावा करना है? मुझसे लूटना है तुम्हें? ऐसे भी सज्जन लोग होते हैं। समझ में आया?

वैसे अज्ञानी राग को, भोग को सेवन करता है, वह मिठास से सेवन करता है। उसे विकार का बन्धन होकर कर्म फल देगा। ज्ञानी राग को भोगता है, वह सुखबुद्धि से नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। अन्दर दुःख की वृत्ति से उसे सेवन करता है। आहाहा! अरे रे! मुझसे सहन नहीं होता। वह दुःख को भोगता है। वह दुःख को भोगता है, उसके फल को नहीं चाहता। आहाहा! सम्यग्दर्शन कोई चीज़ ऐसी है, प्रभु! क्या कहें? आहाहा! कि जिसने आत्मा के अनुभव का स्वाद देखा है, आहाहा! उसे इस राग के भाव में उसे आनन्द आवे, या छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह करे तो उसमें उसकी मिठास या सुखबुद्धि है, (ऐसा नहीं)। मेरा नाथ सुख से भरपूर भण्डार है। यह सुख वहाँ से आता है; बाहर से नहीं आता। आहाहा! वह छियानवें हजार स्त्रियों के भोग में दिखायी दे, उसे उस भोग में सुखबुद्धि नहीं है। प्रभु! आहाहा! दुःखबुद्धि से है, इसलिए उसे कर्म फल नहीं आता। आहाहा! ऐसी बातें हैं। जगत से बहुत अलग प्रकार है, बापू! आहाहा! **कर्म उसे फल नहीं देता। यह तात्पर्य है।**

भावार्थ : यहाँ एक आशय तो इस प्रकार है:-अज्ञानी विषयसुख के लिए अर्थात्... राग में रँगे हुए। **परिणाम के लिए उदयागत कर्म की सेवा करता है...** अज्ञानी राग में रँगकर सेवन करता है। आहाहा! विषय-भोग, पाँच इन्द्रिय के विषय, उनके राग में रँगकर भोगता है। आहाहा! **इसलिए वह कर्म उसे (वर्तमान में) रंजित परिणाम देता है।** राग में रँगे हुए परिणाम उसे मिलते हैं। राग में रँगे हुए परिणाम मिलते हैं। आहाहा!

ज्ञानी विषयसुख के लिए अर्थात्... राग के **रंजित परिणाम के लिए उदयागत कर्म की सेवा नहीं करता...** राग में रस चढ़ गया है और सेवन करता है, ऐसा नहीं। आहा! ज्ञानी को तो आत्मा के आनन्द का रस है। उस रस के समक्ष उसे राग का रस नहीं होता। (राग) आवे, भोगे, परन्तु उसमें रस नहीं होता। आहाहा! देखो, यह निर्जरा! अज्ञानी को राग के रस में रँगा हुआ राग से भोगता है, इसलिए मिथ्यात्व होकर नये कर्म बाँधता है। आहाहा! धर्मी जीव अपने आनन्द के रस को भूलकर राग का रस उसे नहीं होता। आहा! ज्ञान के, आनन्द के रस के समक्ष राग का रस उसे दुःखरूप लगता है; आहाहा! इसलिए

उसके भोग में कर्म खिर जाते हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! वीतरागधर्म कोई दूसरा प्रकार है। आहाहा!

यह तो बाहर में जरा क्रिया की, दया और व्रत पालन किये, तपस्यायें की और दशलक्षणी पर्व तपस्या की, कुछ दान दिया—लाख, दो लाख, पाँच लाख (दिये)। धूल भी वहाँ धर्म नहीं, सुन न! आहाहा! अभी बहुत जगह आता है, पाँच-पाँच लाख दिये। वह एक है न, कलकत्ता? मिश्रीलाल गंगवाल, पाँच लाख दिये। अभी भाई, मणिभाई है न यह? शान्ताबहिन की बहिन के ननदोई। मणिभाई है न? मुम्बई। उन्होंने अभी मोरबी में पाँच लाख दिये। मोरबी में अभी बहुत कष्ट पड़ा है न? लोग बेचारे तरसते हैं। मकान नहीं, सामान नहीं, कपड़े नहीं। आहाहा! एक जोड़ी कपड़े थे, वे मैले एकदम, कीचड़ में रहे हुए। अभी पाँच लाख दिये। लोग ऐसा मान बैठे कि पाँच लाख दिये, इसलिए उसे धर्म हो गया। राग मन्द किया हो तो पुण्य है, धर्म नहीं। पाँच लाख क्या, तेरे करोड़ दे न! आहाहा! पाँच-छह करोड़ रुपये हैं और सब दे देवे तो क्या है? धर्म है उसमें? आहाहा! तब तो ऐसा कहा है न? अपने आ गया था, पद्मनन्दि पंचविंशतिका में कि मन्दिर बनावे, वह बड़ा (मनुष्य है)। छोटा-सा (मन्दिर) बनावे तो बड़ा मनुष्य और वह यदि स्थापित करे तो संघवी कहलाये। आता है न? वह तो सम्यग्दर्शनसहित की बात है। आहाहा! आत्मा का भान है, उसे यह विशाल मन्दिर बनाने का जरा शुभभाव आया, उस शुभ का उसे रस नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! अज्ञानी विषय सुख के लिये रँगे हुए राग से भोग को भोगता है। राग से रँग गया है। उसने चैतन्यमूर्ति को भिन्न नहीं रखा। जिसे राग का रस चढ़ गया है, ऐसे अज्ञानी विषयसुख को भोगते हुए नये बन्धन को पाते हैं, नये कर्म को पाते हैं। आहाहा! **इसलिए वह कर्म उसे (वर्तमान में) रंजित परिणाम देता है।** अर्थात् वह रँगे हुए राग को देता है। राग में रँग जाएगा। आहाहा! भगवान भिन्न है, उसका भान उसे नहीं रहेगा। आहाहा!

ज्ञानी विषयसुख के लिए... राग के रँगे हुए के लिए **उदयागत कर्म की सेवा नहीं करता...** राग का जिसे रंग नहीं, बापू! आहाहा! जिसका—चैतन्य का रंग चढ़ा है...

आहाहा! दामनगर (में) चातुर्मास था। एक बाबा था, बाबा। उस बाबा ने एक स्त्री रखी हुई थी। उसमें फिर उस स्त्री ने उसका आदर नहीं किया। फिर उसे ऐसी कषाय चढ़ गयी। बाबा था, हों! योगी, त्यागी। आहा! काला कोट पहिना। उस स्त्री का नाम लक्ष्मी या ऐसा कुछ था। स्त्री का नाम लक्ष्मी था। यह तो दामनगर में चातुर्मास की बात है। (संवत्) १९८३ की हो या १९७६ की हो। वह रंग ऐसा कि लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी... उसे हैरान, अनादर करने के लिये। वह उपाश्रय के निकट से निकला, कोट में स्त्री का नाम (लिखा था)। किसी को मैंने कहा, परन्तु यह है कौन? यह बाबा जैसा है और यह स्त्री, स्त्री पूरे कपड़े पर; तो उसने वहाँ जाकर कहा, तो कहे—'क्षत्रिय का रंग चढ़ा है, उतरता नहीं अब'। हमें उस स्त्री का रंग चढ़ा है, वह रंग उतरता नहीं—ऐसा बोला। मैंने कहा—यह बाबा है और यह क्या यह? पूरा कोट पहिना और उसमें 'लक्ष्मी.. लक्ष्मी.. लक्ष्मी..' (लिखा हुआ)। मैंने कहा – यह क्या करता है? लक्ष्मी महिला है कोई? कहा, पैसा है? तब कहे, वह तो लक्ष्मी बाई इसने रखी थी, उस बाई ने इसे छोड़ दिया, इसलिए इसको अब ऐसी कषाय हो गयी है। इसलिए किसी ने जाकर उससे कहा कि यह महाराज कहते हैं कि तुम यह क्या करते हो यह? तो कहे—'क्षत्रिय का रंग चढ़ा है, उतरता नहीं।' पाप का रंग। आहाहा! यह तो बना हुआ (प्रसंग) है, हों! दामनगर में। उसका था कहीं, क्या कहलाता है वह? मठ। मठ कहलाता है, क्या कहलाता है वह? मन्दिर का वह था, प्रसिद्ध था, फिर किसी की स्त्री रखी और उसने छोड़ दिया और फिर कषाय में चढ़ गया। बस! पूरे गाँव में घूमे। उसे हैरान करने के लिये, उसका अपमान करने के लिये। क्या है यह? जवाब ऐसा दिया (उसने), 'क्षत्रिय का रंग चढ़ा है, वह रंग अब उतरता नहीं।' पाप का रंग चढ़ा है, वह अब उतरता नहीं।

इसी प्रकार इस अज्ञानी को भोग के काल में राग का रस चढ़ा है, वह इसे उतरता नहीं। आहाहा! और ज्ञानी को भोग काल में, आत्मा का रस चढ़ा है, वह उतरता नहीं। आहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है। अरेरे! इसे सच्चा तत्त्व सुनने को मिलता नहीं और जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! यह तो पशु जैसी जिन्दगी कहलाती है। आहाहा! सत्य क्या है? परमात्मा त्रिलोक के नाथ ने सत्य का क्या स्वरूप कहा है? और असत्य में जाए तो क्या दशा है? उसका कथन भी सुनने को नहीं मिलता, वह कब अन्दर समझे।

यहाँ यह कहते हैं, **दूसरा आशय इस प्रकार है:-अज्ञानी सुख(-रागादिपरिणाम) उत्पन्न करनेवाले आगामी भोगों की अभिलाषा से व्रत, तप इत्यादि शुभकर्म करता है...** आहाहा! मन्दिर बनावे, परन्तु अन्दर में अन्दर में आशा गहरी कि इससे मुझे कुछ फल मिलेगा और इसमें से मैं भविष्य में सुखी होऊँगा। आहाहा! बाहर का सुखी, इस धूल का। आहाहा! **व्रत, तप इत्यादि शुभकर्म...** शुभ परिणाम अज्ञानी करता है, वह आगामी भोगों के अभिप्राय से (करता है)। भविष्य में मुझे अनुकूल भोग मिले, साधन मिले। आहाहा! **इसलिए वह कर्म उसे रागादिपरिणाम उत्पन्न करनेवाले आगामी भोगों को देता है।** उसे भविष्य में भोग मिलेंगे, संयोग मिलेंगे, भटकने के संयोग मिलेंगे। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! आहाहा!

एक भोग को भोगते हुए राग का रस जिसे चढ़ गया है, उसे कर्म बन्धन होकर संयोग मिलेंगे और जिसे राग का रस उतर गया है, आहाहा! ज्ञान का रस और आनन्द रस, जिसे आत्मरस चढ़ा है, उसे पर का रस नहीं चढ़ता। उसे राग का रस मीठा नहीं लगता। आहा! ऐसी बातें हैं। बहुत फेरफार। अभी की सम्प्रदाय की पद्धति और यह वीतराग की पद्धति, पूरा बड़ा अन्तर है। हैं? विपरीत है। आहाहा!

ज्ञानी के सम्बन्ध में इससे विपरीत समझना चाहिए। ज्ञानी को भोग के राग का रस नहीं है, इसलिए उसके कर्म उत्पन्न नहीं होते। **इस प्रकार अज्ञानी फल की वांछा से कर्म करता है...** गहरे-गहरे उसे राग का रस है, इसलिए उसे राग का फल संसार मिलेगा। भटकने के भव (मिलेंगे)। आहाहा! **इसलिए वह फल को पाता है...** भटकने का। आहाहा! **ज्ञानी फल की वांछा बिना...** राग को करता है अथवा राग को भोगता है। **इसलिए वह फल को प्राप्त नहीं करता।** आहाहा!

कलश - १५३

(शार्दूलविक्रीडित)

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं,
किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्प-परम-ज्ञानस्वभावे स्थितो,
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः।।१५३।।

अब, ''जिसे फल की इच्छा नहीं है, वह कर्म क्यों करे?'' इस आशंका को दूर करने के लिए काव्य कहते हैं:-

श्लोकार्थ : [येन फलं त्यक्तं सः कर्म कुरुते इति वयं न प्रतीमः] जिसने कर्म का फल छोड़ दिया है, वह कर्म करता है, ऐसी प्रतीति तो हम नहीं कर सकते। [किन्तु] किन्तु वहाँ इतना विशेष है कि- [अस्य अपि कुतः अपि किंचित् अपि तत् कर्म अवशेन आपतेत्] उसे (ज्ञानी को) भी किसी कारण से कोई ऐसा कर्म अवशता से (-उसके वश बिना) आ पड़ता है। [तस्मिन् आपतिते तु] उसके आ पड़ने पर भी, [अकम्प-परम-ज्ञानस्वभावे स्थितः ज्ञानी] जो अकम्प परमज्ञानस्वभाव में स्थित है, ऐसा ज्ञानी [कर्म] कर्म [किं कुरुते अथ किं न कुरुते] करता है या नहीं [इति कः जानाति] यह कौन जानता है?

भावार्थ : ज्ञानी के परवशता से कर्म आ पड़ता है तो भी वह ज्ञान से चलायमान नहीं होता। इसलिये ज्ञान से अचलायमान वह ज्ञानी कर्म करता है या नहीं - यह कौन जानता है? ज्ञानी की बात ज्ञानी ही जानता है। ज्ञानी के परिणामों को जानने की सामर्थ्य अज्ञानी की नहीं है।

अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर ऊपर के सभी ज्ञानी ही समझना चाहिए। उनमें से, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत सम्यग्दृष्टि और आहारविहार करते हुए मुनियों के बाह्य-क्रियाकर्म होते हैं, तथापि ज्ञानस्वभाव से अचलित होने के कारण निश्चय से वे, बाह्य-क्रियाकर्म के कर्ता नहीं हैं, ज्ञान के ही कर्ता हैं। अन्तरंग मिथ्यात्व के अभाव से तथा

यथा–सम्भव कषाय के अभाव से उनके परिणाम उज्ज्वल हैं। उस उज्ज्वलता को ज्ञानी ही जानते हैं, मिथ्यादृष्टि उस उज्ज्वलता को नहीं जानते। मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा हैं, वे बाहर से ही भला–बुरा मानते हैं; अन्तरात्मा की गति को बहिरात्मा क्या जाने?।।१५३।।

कलश - १५३ पर प्रवचन

अब, ''जिसे फल की इच्छा नहीं है वह कर्म क्यों करे?'' इस आशंका को दूर करने के लिए काव्य कहते हैं:– फल नहीं (चाहिए) तो भोगता किसलिए है? सुन, भाई!

त्यक्तं येन फलं स कर्म कुरुते नेति प्रतीमो वयं,
किन्त्वस्यापि कुतोऽपि किञ्चिदपि तत्कर्मावशेनापतेत्।
तस्मिन्नापतिते त्वकम्प–परम–ज्ञानस्वभावे स्थितो,
ज्ञानी किं कुरुतेऽथ किं न कुरुते कर्मेति जानाति कः।।१५३।।

आहाहा! **[येन फलं त्यक्तं सः कर्म कुरुते इति वयं न प्रतीमः] जिसने कर्म का फल छोड़ दिया है...** आहाहा! राग का फल रंजितपना और उसके फल का मिलना संयोग, (वह) छोड़ दिया है। आहाहा! और जिसे आत्मा के रंग का रस चढ़ा है। आहाहा! राग से भिन्न करके जिसे भेदज्ञान हुआ है। आहाहा! वह भेदज्ञानी जीव... आहाहा! (उसने) कर्मफल छोड़ा है। वह राग से भिन्न पड़ा है, इसलिए राग का फल मिले और मेरा है, ऐसी दृष्टि उसे छूट गयी है। गजब बात! कान्तिभाई! वहाँ तुम्हारे यहाँ सब चलता है, अपवास करो और यह करो। भारी काम किया, हों! तुमने बहुत अच्छा किया। आहाहा! यहाँ छोड़कर आये हैं, महीने–सवा महीने से पड़े हैं। सवा महीना हुआ? कितने हुए? महीना, सवा महीना हुआ? महीना! अच्छा किया। वहाँ प्रमुख है, बापू! मार्ग यह है, भाई! आहा! उस सम्प्रदाय में तो इसकी बातें नहीं मिलती, भाई! आहाहा!

कहते हैं, जिसने राग के फल और राग में सुखबुद्धि को उड़ा दिया है। आहा! जिसे आत्मा के ज्ञान के सुखबुद्धि में रस चढ़ गया है, आहा! (उसने) **कर्म का फल छोड़ दिया है, वह कर्म करता है...** वह राग करता है और राग भोगता है, **ऐसी प्रतीति तो हम नहीं कर सकते।** आहाहा! हमें तो यह बात बैठती नहीं, कहते हैं। मुनि की बात कहते हैं।

आहाहा! क्या कहा यह ? कि जिसे दया, दान, व्रतादि के परिणाम का रस छूट गया है, उसको फल मुझे सुख है या उसे भोगता हूँ, इसलिए मुझे सुख मिलेगा, यह दृष्टि जिसकी छूट गयी है, आहाहा! और जिसे भगवान ज्ञातृतत्त्व, उसका जिसे रस चढ़ा है, वह कर्म करता है और भोगता है या नहीं, कौन जाने ? हम तो मानते नहीं, कहते हैं। आहाहा!

श्वेताम्बर में एक आता है, 'अयवन्तोकुमार' की बात। 'अयवन्तोकुमार' 'भगवती' में आता है। है कल्पित बात, परन्तु वह छोटी उम्र में साधु हुआ। बालक था, राजकुमार (था)। बालक छोटा, छोटी उम्र। और पात्र कहते हैं न ? श्वेताम्बर तो माने न ? मुनि को पात्र-बात्र होते नहीं। परन्तु वे लोग पात्र लेकर उनके गुरु के साथ दिशा को गये। बाहर गये, वहाँ वर्षा आयी। वर्षा आयी तो इतना अधिक पानी बहे। उसमें साधु बालक था न, इसलिए जरा धूल की पाल बाँधी और पानी इकट्ठा किया और उसमें पात्र रखा। ऐसा आता है, भगवतीसूत्र में आता है। है न, सब पढ़ा है न ? भगवतीसूत्र, सोलह हजार श्लोक और सवा लाख (श्लोक प्रमाण) टीका। सत्रह बार पढ़ा है। आहाहा! फिर वहाँ बोलते हैं कि 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, मुनिवर जल शु खेल करे ऐ मोहकर्म ना ए चाला।' आहाहा! मुनिवर नानडिया ऐ बाला।' बालक मुनि है, वह नाव में ऐसा करता है। 'मोरी नाव तरे रे, ऐ मोह ना चाला' परन्तु मुनि को यह होता ही नहीं। मुनि को पात्र ही नहीं होते। पात्र रखे, वह मुनि नहीं। आहाहा!

ऐसी बात उसमें—भगवती में सब कल्पित बातें। श्वेताम्बर साधु ने दिगम्बर में से निकलकर ऐसे कल्पित शास्त्र बनाये। प्रभु... प्रभु! लोगों को दुःख लगे, ऐसा है, हों! है ? क्योंकि यहाँ तो सब देखा है न! ४५ वर्ष तो श्वेताम्बर में रहे। करोड़ों श्लोक, करोड़ों श्लोक! पूरा धन्धा ही (यह किया है)। दुकान पर था तो भी मैं तो पढ़ता था। हमारे शिवलालभाई थे, वे बैठते। मैं तो जब वे गद्दी पर बैठे, (तब) मैं तो अन्दर शास्त्र पढ़ूँ। १८-१९ वर्ष की उम्र से, हों! यह श्वेताम्बर के शास्त्र हैं न ? 'दशवैकालिक', 'उत्तराध्ययन', 'आचारांग', वे सब दुकान पर पढ़े थे। ७० वर्ष पहले। यह बात उनमें नहीं, बापू! आहाहा! उसमें ऐसी बात डाली (कि) साधु होकर पानी में पात्र डाले और यह मोहकर्म का खेल (कहे)।

मुमुक्षु : पात्र को सिद्ध करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्र को सिद्ध करना है और वापस वह साधु देखता है न, इसलिए साधु एकदम भगवान के पास जाता है। 'महाराज! यह...' 'अरे! तुम इसकी ग्लानि नहीं करना, वह इस भव में मोक्ष जानेवाला है।' ऐसी बात, ऐसा पाठ है। भगवती में है। साधु को ऐसा हुआ कि यह पानी को ऐसा करता है और अपने अब इसे स्पर्श नहीं करें। (इसलिए उसे) छोड़कर भगवान के पास गया, भगवान को कहे, 'यह राजकुमार...' (भगवान कहते हैं) 'यह तुम इसकी ग्लानि मत करो, यह तो इस भव में मोक्ष जानेवाला है।' परन्तु ऐसी क्रिया करता है न!

मुमुक्षु : मोक्ष जानेवाला हो, फिर क्रिया ऐसी हो जाए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मोक्ष जानेवाला, इसलिए उसकी ऐसी क्रिया कहाँ थी? वह तो अकेली पाप की क्रिया। साधु कब रहा? बहुत कठिन। आहाहा!

यहाँ कहते हैं धर्मी जीव, जिसे आत्मा का ज्ञानरस चढ़ा है, जिसे समकित का रस चढ़ा है, वह राग के भोग में रँगता है या नहीं? वह राग करता है या नहीं? कैसे हम प्रतीति करें? वह तो उस समय ज्ञान करता है, कहते हैं। आहाहा! यह तो दोपहर को आया नहीं? वास्तव में तो इस शरीर की अवस्था होती है, वह विश्व में जाती है। उस अवस्था का यहाँ ज्ञान होता है। वह अवस्था चाहे जैसी हो। समझ में आया? उसका यहाँ ज्ञान होता है। विश्व का और शब्दब्रह्म का जैसे ज्ञान होता है, कहा न? तो विश्व में इस शरीर की अवस्था रोग की हो, चाहे जो हो। आहाहा! ज्ञानी को तो ज्ञान में वह अवस्था जानने की ज्ञान की पर्याय इतनी ही होती है। वह उसे जाने। आहाहा! समझ में आया? उसे ऐसा नहीं कि यह शरीर ऐसा है, इसलिए मुझे नुकसान है। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। उसका अधिष्ठाता हूँ। आहाहा!

शरीर की अवस्था—देह की अवस्था, भोग की अवस्था... आहाहा! यह सब विश्व है। उसका मैं जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं। लोगों को ऐसा दिखता है कि यह तो करते हैं न? तो यहाँ मुनिराज कहते हैं कि वह करता है या नहीं करता? करता है, ऐसी प्रतीति हम मानते नहीं। प्रसन्नभाई! ऐसा कहाँ है? वहाँ कहीं है? आहाहा! महेन्द्रभाई तो अभी रच-पच गये हैं, पैसे में। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! तीन लोक के नाथ भगवान की वाणी है। यह सन्तों की वाणी है, वह भगवान की ही वाणी है। भगवानतुल्य ही ये सन्त

हैं। आहाहा! वे स्वयं भगवान स्वयं हैं। वे ऐसा कहते हैं कि धर्मी, जिसे ज्ञान का रस चढ़ा है, जिसे आत्मदर्शन हुआ है, वह दर्शनवाला जीव राग को भोगता है या नहीं भोगता, यह कौन जाने? तुझे क्या खबर पड़े? है? **'कुरुते अथ किं न कुरुते'** करता है या नहीं करता? कर्म **'इति कः जानाति'** कौन जाने? तुझे खबर है? आहाहा!

पुत्र जवान हो और माता की चालीस वर्ष की जवान हो, पुत्र बीस वर्ष का जवान (हो)। माता नहाती हो और शरीर नग्न हो, खाट आड़े रखकर नहाते हैं न? अब उसमें खड़ी हुई और लड़के की नजर गयी तो वह नजर से देखता है या नहीं देखता? कहे कौन? कहते हैं। उस प्रकार से देखता है? माता की नग्नदशा को पुत्र देखता है? परन्तु आँख तो उसकी ऐसे गयी है। मेरी जननी, मैं इसके गर्भ में सवा नौ महीने रहा, मेरी माता है। उसे नग्न मैं कैसे देखूँ? आहाहा! उसकी नजरें ऐसे गयी तो भी वह उसे देखता नहीं, कहते हैं। इसी प्रकार धर्मी राग में आ गया, तो भी राग को करता और भोगता नहीं है। आहाहा! माँगीलालजी! ऐसी बातें कहीं सुनने को मिले, ऐसा नहीं है अभी। बापू! ऐसी बातें हैं। आहाहा! जिसके एक-एक वचन, एक-एक भाव... आहाहा! उनकी कीमत क्या? आहाहा!

मुनिराज अमृतचन्द्राचार्य। कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया और अमृतचन्द्राचार्य ने उनके गणधर जैसा कार्य किया है। वे मुनिराज ऐसा कहते हैं, प्रभु! सम्यग्दृष्टि जीव, जिसे आत्मा का रस चढ़ा है, आहाहा! वह इस भोग के समय राग के रस में है या नहीं; राग करता है या भोगता है या नहीं, कौन जाने? तुझे क्या खबर पड़े? वह तो उस समय भी जानने-देखनेवाला रहता है। आहाहा! क्योंकि वह विश्व का... यह तो आ गया है, भाई अपने? अधिष्ठान। आत्मा, जो जगत की चीजें हैं, शरीर-रागादि वह विश्व में जाता है, तो उसे ज्ञातृतत्त्व है जो निजपद, जो उसका आधार है, वह उसका ज्ञान करता है और शब्द का भी ज्ञान करता है। उस शब्द और अर्थ का अधिष्ठान आत्मा है। अधिष्ठान अर्थात् उन्हें जाननेवाला आधार स्वयं है। आहाहा! उनका करनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! क्या वीतराग के सन्तों की धारा! अमृत की धारा बरसायी है! प्रभु! जिसने अमृत का रस चखा, उसे वह भोग में भोगता है और रस है या नहीं, उसकी तुझे क्या खबर पड़े? **'कः जानाति' 'कुरुते'** राग करता है या नहीं करता, कौन जाने? अर्थात् कि वह राग नहीं करता। आहाहा! उस समय भी राग सम्बनधी और देह सम्बन्धी जो क्रिया होती

है, उसे ज्ञाता उसके ज्ञानरूप परिणमता है, वह उसका कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

किन्तु वहाँ इतना विशेष है कि– [अस्य अपि कुत: अपि किंचित् अपि तत् कर्म अवशेन आपतेत्] उसे (ज्ञानी को) भी किसी कारण से कोई ऐसा... राग **अवशता से (–उसके वश बिना) आ पड़ता है।** आहाहा! **[तस्मिन् आपतिते तु]** यह राग आ पड़ा। आहाहा! **उसके आ पड़ने पर भी,... [अकम्प–परम–ज्ञानस्वभावे स्थित: ज्ञानी]** देखो! आहाहा! उस क्षण भी **जो अकम्प परमज्ञानस्वभाव में स्थित है...** आहाहा! उस राग में स्थित नहीं है। राग की, देह की क्रिया (होती है), उसमें स्थित नहीं। उस सम्बन्धी का यह ज्ञान होता है, उस ज्ञान में स्थित है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भोग नहीं, भोग छोड़े हैं और त्यागी हुआ है, वह राग का त्यागी है या नहीं, तुझे क्या खबर पड़े? तू तो बाहर से देखता है कि यह त्यागी है। परन्तु अन्दर राग का रस चढ़ा है। दया, दान, व्रतादि के परिणाम का रस चढ़ा है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'गृहस्थो मोगमग्गो' आता है न? रत्नकरण्डश्रावकाचार। गृहस्थाश्रम में भी समकिती मोक्षमार्गी है और त्यागी है, वह भी रागरसवाला है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! 'अणगारो मोही' रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है। कहाँ गये? पण्डितजी! अनगार होने पर भी राग के रस में प्रेम है, यह व्रत, तप और भक्ति का विकल्प है, उसका रस है (तो वह) मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और गृहस्थाश्रम में जिसे आत्मा के ज्ञान का रस चढ़ा है, वह भले भोग में दिखायी दे, परन्तु वह भोग में है या नहीं, यह तुझे क्या खबर पड़े? वह तो वहाँ ज्ञान करता है। उस समय का अवसर उसका उस समय का उस प्रकार के ज्ञान को जाने, ऐसी ज्ञान की अवस्था उसे होती है। आहाहा! यह निर्जरा अधिकार है। समझ में आया? आहाहा!

इस अकम्प ज्ञानस्वभाव में स्थित अर्थात् कि ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा के ज्ञान में और उसकी प्रतीति में और उसमें एकाकार है, उसे भोग और राग का ज्ञान है। वह ज्ञान भी स्वयं के कारण से हुआ है। भोग और क्रिया की क्रिया है, इसलिए उसका यहाँ हुआ, ऐसा नहीं है। उस काल में भी ज्ञातृतत्त्व का अनुभव होने से स्व–पर प्रकाशक की पर्याय स्वयं के कारण से प्रगट हुई है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग! हीराभाई! क्या करे? एक तो लोगों को

धन्धे के कारण, पाप के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। पूरे दिन धन्धा और स्त्री-पुत्र। आहाहा! थोड़ा समय मिले, सिर पर कहनेवाला मिले, जय नारायण! किशोरभाई! बात सच्ची है या नहीं? तुम्हारे यहाँ वापस सब पैसेवाले लोग, नैरोबी। साठ लाख, सत्तर लाख। यह नैरोबी रहते हैं। अभी मन्दिर बनाया है, नैरोबी। पैसेवाले लोग। पन्द्रह लाख क्या, करोड़ का बनावे न! वह क्रिया तो उस काल में होनेवाली है। ज्ञानी को उस काल में होती हुई क्रिया का स्वयं से ज्ञान होता है। आहाहा! इसलिए वह मन्दिर को करता है या अन्दर राग आया, उसका कर्ता है या नहीं? ज्ञानी (कर्ता) नहीं होता। आहाहा! अब ऐसी बातें!

एक ओर कहे कि मन्दिर और मन्दिर में प्रतिमा स्थापित करे तो संघवी कहलाये। छोटी भी प्रतिमा स्थापित करे तो उसके पुण्य का पार नहीं, ऐसा कहा जाए। पद्मनंदि-पंचविंशतिका में आता है।

मुमुक्षु : पुण्यबन्ध न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य। परन्तु वह तो धर्मी को स्वभाव की दृष्टि में ऐसा भाव आया, उसका फल उसे पुण्य है। परन्तु वह पुण्य और राग का भी जाननेवाला है। आहाहा! ज्ञानी को लक्ष्मी के ढ़ेर आते हों, अरबों, करोड़ों। उस काल में उसका ज्ञान उसका उस प्रकार का स्वयं से स्वयं को परिणमता है, उस ज्ञान का कर्ता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें!

'अकम्प ज्ञान'—भाषा देखो! राग आया, भोग में दिखायी दे, तथापि ज्ञान का काल ऐसा स्वयं का उस समय में है कि उस सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं को स्व-परप्रकाशक का प्रगट होता है। उसमें वह अकम्प है। आहाहा! **परमज्ञानस्वभाव में स्थित...** परम अर्थात् यह। अपना स्वभाव। शास्त्रज्ञान और वह नहीं। परम ज्ञान अर्थात् अपना स्वरूप। परमज्ञानस्वभाव कहा न? परमज्ञानस्वभाव जो त्रिकाल, उसमें स्थित है। आहाहा!

भरतेश वैभव में एक (बात) आती है। भरत चक्रवर्ती को छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। भले 'भरत' पुत्र थे उनके, ऐसा उसमें लेख है कि विषय लेते हैं, वह विषय लेकर जहाँ निवृत्त होते हैं, नीचे बैठते हैं, (वहाँ) ध्यान में निर्विकल्पता आ जाती है। 'भरतेश वैभव' में है। है, खबर है न। वह पूरा पढ़ा है न! आहाहा! क्योंकि उस विकल्प का रस नहीं था, परन्तु आ पड़ा हुआ राग... आहाहा! इसलिए दुनिया ऐसा माने कि यह कर्ता है और भोगता है, परन्तु उस समय भी उसका ज्ञान ही करता है। आहाहा! वह जहाँ नीचे उतरता है, वहाँ

ध्यान में निर्विकल्पता हो जाती है। उस समय विकल्प था, उसका ज्ञान करता (था)। आहाहा! नीचे निर्विकल्पदशा हुई, उसका वह ज्ञान करता है। ऐसी बातें हैं। दुनिया से भिन्न प्रकार है, बापू! वीतराग परमेश्वर की बातें... आहाहा!

जिसे आत्मा का रस चढ़ा, उसे यह सब; जैसे श्मशान में हड्डियाँ और चमक दिखती है, वह सब चमक (दिखती है)। ओहो! यह मकान और स्त्री रूपवान। क्या है परन्तु यह? यह जिसे रस है, वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि को इस सब दिखाव में, भोगने में दिखता है, तो भी वह भोगता नहीं है। वास्तव में तो उसे देखता भी नहीं है। स्वयं अपने को देखता है। आहाहा! जो स्व-परप्रकाशक की पर्याय उस काल में उस प्रकार की उत्पन्न हुई, उसे जानता है और देखता है। ऐसी बातें। अरे! जगत को कहीं निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! फुरसत नहीं मिलती। सत्य का तुलना करके निर्णय करना। आहाहा! हम क्या मानते थे और यह क्या है? इसकी तुलना करके अन्दर निर्णय करना, यह कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह करता है या नहीं करता, यह कौन जाने? तुझे क्या खबर पड़े, कहते हैं कि यह भोगता है न? परन्तु तुझे क्या खबर पड़े? तुझे ज्ञान होवे तो खबर पड़े कि यह तो उस समय ज्ञान करता है। समझ में आया? आहाहा! स्वच्छन्द होकर भोगता है, (ऐसी) नहीं। स्वतन्त्र ज्ञान को करके राग को जानता है। ज्ञान को स्वतन्त्र करके ज्ञान का कर्ता होकर ज्ञान का कार्य करता है। यह राग और देह की भोग की क्रिया दिखे, उसके कारण से यहाँ ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। उस काल में अपना स्व-परप्रकाशक ज्ञान स्व का आश्रय होने से जो पर्याय, उसे जानने की पर्याय स्वयं से प्रगट होती है, उसे वह जानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसी बातें!

अब वह त्यागी होकर बैठा, साधु होकर दिगम्बर हो, वस्त्र न हो, पात्र न हो परन्तु वह महाव्रत के राग का कण आवे, वह मेरा है—ऐसा रस चढ़ा है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे आत्मा का रस नहीं है, राग का रस है; और ज्ञानी गृहस्थाश्रम में भोग में और राग में दिखायी दे तो कहते हैं कि वह राग और भोग में आया नहीं, वह तो ज्ञान में स्थिर है। आहाहा! अब यह अन्तर कौन माने? आहाहा! **करता है या नहीं यह कौन जानता है?**

भावार्थ : ज्ञानी के परवशता से कर्म आ पड़ता है... रागादि। **तो भी वह (ज्ञानी) ज्ञान से चलायमान नहीं होता।** आहाहा! ज्ञातादृष्टा हूँ, ऐसी मेरी चीज़। वहाँ से हटता नहीं, चलायमान नहीं होता। चाहे जैसे छियानवें करोड़ स्त्री के विषय में हो। आहाहा! परन्तु अपना ज्ञानस्वरूप है, वहाँ से हटता नहीं। आहाहा! **इसलिए ज्ञान से अचलायमान वह ज्ञानी...** ज्ञान में-स्वरूप में है, उसकी दृष्टि वहाँ है, इसलिए वह ज्ञानी राग और बाह्य की क्रिया करता है या नहीं करता, **यह कौन जानता है?** आहाहा! अटपटी बातें हैं। फिर यहाँ का विरोध करे। इसका विरोध नहीं करता, प्रभु! तू तेरा विरोध करता है। यहाँ का विरोध कौन करे? किसी का विरोध कौन करे? आहाहा! स्वयं को यह बात बैठती नहीं, इसलिए स्वयं अपना विरोध करता है। आहाहा!

इसलिए ज्ञान से अचलायमान वह ज्ञानी कर्म... राग को, भोग को, कर्म को **करता है या नहीं, यह कौन जानता है? ज्ञानी की बात ज्ञानी ही जानता है।** ज्ञानी ही जाने। आहाहा! 'भरत' का दृष्टान्त दिया है टीका में। 'भरत'। भरत ऐसा कि इतनी-इतनी स्त्रियाँ, हर रोज सौ-सौ स्त्रियों से विवाह करे, तो भी वह राग में रँगा हुआ नहीं है, वह तो ज्ञान के रस में रँगा हुआ है। और रावण का दृष्टान्त दिया है। रावण ऐसा कि इस प्रकार से सब भोगता था अज्ञानभाव से; जिसके स्फटिक के तो बँगले, स्फटिक के बँगले। एक-एक स्फटिक करोड़ रुपये का। ऐसे पूरे स्फटिक के बँगले, उसमें रस चढ़ गया। अज्ञानी 'रावण'। आहाहा!

ज्ञानी की बात ज्ञानी ही जानता है। ज्ञानी के परिणामों को जानने की सामर्थ्य... आहाहा! क्या कहते हैं? धर्मी जीव के परिणाम उस समय क्रियाकाण्ड के समय भी राग से भिन्न परिणाम हैं। आहाहा! उन परिणामों को जानने का काम-सामर्थ्य अज्ञानी का नहीं है। अज्ञानी का काम नहीं है, भाई! आहाहा! स्वयं सब संयोग छोड़कर बैठा हो, ऐसे सब हो, इसलिए हम त्यागी हैं और उसको संयोग है, इसलिए भोगी हैं, कैसे तुझे खबर पड़े? बापू! वह संयोग में भी ज्ञान में स्थिर है। वह स्व-परप्रकाशक ज्ञान में स्थित है। वह बाहर के काम में आया नहीं, निकला ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)